GLOBALCULTURZ Vol.III No.2 May-August 2022 ISSN:2582-6808
Article ID-2022-3-2-001 **Pages:** 501-507 **Language:** Hindi
Date of Receipt: 2022.05.10 **Date of Review:** 2022.05.25 **Date of Pub:** 2022.05.31
Domain of Study: *Humanities & Social Sciences* **Sub-Domain:** *Literary Studies*

सामाजिक असमानता तथा वृन्दावन लाल वर्मा का उपन्यास साहित्य

डॉ. महेश पाल सिंह
भीमराव अम्बेडकर महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत
E-mail:*maheshpalsingh001@gmail.com* [M:+*91-9968720378*]

About the Author

भीमराव अम्बेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्यरत

Note in English

Literary Studies

शोध सारांश

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द और उसके बाद तथा उनके साथ आने वाले साहित्यकारों ने उपर्युक्त दोनों विचार घटनाओं का मंथन विश्लेषण किया है, वृन्दावन लाल वर्मा का कथा साहित्य हमारे सामने जिस परिदृश्य को प्रस्तुत करता है वह विचार की इन्हीं धाराओं से प्रचालित हुआ है। भारत की सामाजिक स्थिति कई दृष्टियों से एक अपनी निजी ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर निर्मित हुई है जिसमें जातीयता का विशेष स्थान रहा है, यह जातीय दृष्टिकोण सदा ही एक-सा प्रभावी रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता लेकिन इसका परावर्तन साहित्य में सदैव परिलक्षित हुआ है - भारत वर्ष में दीर्घकाल तक वर्ण व्यवस्था और संयुक्त परिवार समाज संगठन के आधार के मुख्य सतम्भ थे। ये दोनों तत्व आज भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं।

कूट शब्द- **हिंदी उपन्यास, समाज, साहित्य, असमानता**

शोध आलेख

सिग्मण्ड फ्रायड और कार्ल मार्क्स ऐसी विचारधाराएँ लेकर आये थे जो परस्पर अलग धुरियों से निःसृत हुई थीं लेकिन आधुनिक साहित्य के ताने-बाने में दोनों को ग्रन्थित और गुम्फित होना पड़ा; फ्रायड जिस वैयक्तिक इच्छा, आकांक्षा, आवेश की बात करते हैं, साहित्य उनके बिना नहीं चल सकता लेकिन व्यष्टि के इस प्रबल अस्तित्व को स्वीकार करते हुए समष्टि और समाज के व्यापक अस्तित्व को भी नकारा नहीं जा सकता, इसलिए मार्क्स ने जिस वर्ग-संघर्ष और सामाजिक असमानताओं की ओर हमारे चेतन को खींचा है, वे भी सर्जनात्मक साहित्य को दूर तक प्रभावित किये बिना नहीं रह सके। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द और उसके बाद तथा उनके साथ आने वाले

साहित्यकारों ने उपर्युक्त दोनों विचार घटनाओं का मंथन विश्लेषण किया है, वृन्दावन लाल वर्मा का कथा साहित्य हमारे सामने जिस परिदृश्य को प्रस्तुत करता है वह विचार की इन्हीं धाराओं से प्रचालित हुआ है। भारत की सामाजिक स्थिति कई दृष्टियों से एक अपनी निजी ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर निर्मित हुई है जिसमें जातीयता का विशेष स्थान रहा है, यह जातीय दृष्टिकोण सदा ही एक-सा प्रभावी रहा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता लेकिन इसका परावर्तन साहित्य में सदैव परिलक्षित हुआ है - भारत वर्ष में दीर्घकाल तक वर्ण व्यवस्था और संयुक्त परिवार समाज संगठन के आधार के मुख्य सतम्भ थे। ये दोनों तत्व आज भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। ये आज अपने प्राचीन रूप में तो नहीं है, लेकिन परिवर्तित संदर्भों में वर्ण व्यवस्था ने नये रूपाकार ग्रहण कर लिए हैं। कर्मणाश्रित प्राचीन वर्ण व्यवस्था समाज को संगठित करने के लिए स्थापित हुई थी। उस समय तक ग्राम्य मूलक समाज था। कर्मकौशल ही वर्ण विभाजन का आधार था पर धीरे-धीरे रूढ़ होती हुयी यह व्यवस्था कर्म से जन्म के बिन्दु पर आ टिकी। वर्णों से जातियों का उद्भव एवं विकास बहुत सीमा तक समाजशास्त्रियों को भी मान्य रहा है। जातीय उच्चतर के बोध ने समाज में ऊँच, नीच, छुआछूत के गर्हित उपादान पैदा किये और कुलों, गोत्रों, वंशों, खानदानों में विखण्डित होता हुआ समाज अपनी सहिष्णुता को पचाने की क्षमता को खो बैठा तथा एक ऐसी खाई खोद दी जिसका व्यापक परिणाम लंबी पराधीनता के रूप में भारत को भोगना पड़ा, जिसकी पीड़ा से आज भी भारत विक्षिप्त है। धनी वर्ग, गरीब वर्ग, अभिजात्य एवं पिछड़ा वर्ग की अवधारणायें महत्वपूर्ण हैं पर आज राजनेता, व्यापारी और प्रशासक ने मिलकर जिस उच्च वर्ग का संगठन किया है। वह निम्न वर्गों और वंचित श्रेणियों के लिए त्रास का कारण बना है।

1947 के विभाजन ने सामाजिक समीकरणों को विशेष रूप से प्रभावित किया है। जाति, उपजाति, धन, सम्पत्ति आदि का भेदभाव स्वतः मिटने लगा और एक नयी समाज व्यवस्था का विकास हुआ। स्वाधीन भारत का निम्न वर्ग जागरूक हो गया है। संविधान में उसको समान अधिकार मिला है। निम्न वर्ग अपने पर किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है, अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। निम्न वर्ग के पास जनशक्ति है और उच्च वर्ग के पास धन शक्ति। सम्पूर्ण समाज को, अब तक यही अर्थ शक्ति नियंत्रित करती रही है। पर अब अर्थ शक्ति को चुनौती देने वाला सर्वहारा वर्ग तैयार हो रहा है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तो राष्ट्रीय सरकार द्वारा वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने के अनेक प्रयास किये गये। जातिगत भेदभाव को कानूनन अपराध घोषित किया गया। परन्तु स्वाधीनता संग्राम के समय देश में जिस सामाजिक दृष्टिकोण का विकास हुआ था, उसे भाषावार प्रान्तों की रचना के बाद स्वार्थन्धि नेताओं ने आहत किया है। जातिगत आधार पर वे जनता को बहला फुसलाकर अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति करने में तत्पर दिखाई दे रहे हैं। चुनाव में जाति विशेष के आधार पर टिकट बाँटे जा रहे हैं। जातीय नेताओं का अभ्युदय हो रहा है। फलतः जातिप्रथा का कुत्सित रूप पुनः बढ़ता जा रहा है। आधुनिक उपन्यासकारों ने वर्णव्यवस्था के कुत्सित रूप को पहचानकर सामाजिक चेतना के आधुनिक संदर्भ में प्रगतिशील दृष्टिकोण

द्वारा इसका विरोध किया है। विभिन्न उपन्यासों में वर्णव्यवस्था सम्बन्धी बुराइयों का पर्याप्त विरोध किया है, क्योंकि यह हमारी जनतांत्रिकता से दूर तक नहीं जुड़ता। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की भांति वृन्दावन लाल के महत्वपूर्ण उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' में भी जाति-पाति का विशद चित्रण है। प्रारम्भ में अग्निदत्त और नामदेव के वार्तालाप से तत्कालीन जाति-पाँति और ऊँच-नीच की भावना का स्पष्ट पता लगता है। "अग्निदत्त ने फिर थोड़ा सा थमकर कहा - "सोहन पाल जाति-पाँति का बखेड़ा उपस्थित करेगा। नाग ने चोट सी खाई। वह आवेग के साथ बोला मैं खंगार ठाकुर हूँ। वह भी हमसे कुछ ऊँचा नहीं है। मैंने तुम्हारे पिता से पता लगाया है कि सोहन पाल की नसों में वही रक्त बहता है, जो मेरी नसों में। बतलाओ, हमलोग सोहन पाल से किस बात में कम है।1 "जाति-पाँति के विषय में आप मेरे विचार जानते हैं। मैं तो ब्राह्मणों को भी आपसे ऊँचा नहीं मानता। मैं तो कहता हूँ कि ब्राह्मणों में और आप में भी सम्बन्ध होने लगें तो में सबसे पहले ऐसे सम्बन्ध का स्वागत करने के लिए तैयार हूँ।2 वर्मा जी ने धार्मिक और जातीय संघर्ष का सजीव चित्रण किया है। मुसलमान सैनिक और राजपूत वीरों के बीच हुये युद्ध तथा मुसलमानों को गिरफ्तार कर लेने पर हिन्दुओं की उदारता कई जगहों पर वर्णित है। नागदेव से एक मुसलमान सैनिक जब यह कहता है कि - "तुम मुझे गुलाम बनाओगे, मार डालोगे या छोड़ दोगे" इस पर नाग उत्तर देता है कि "तुमको छोड़ेंगे नहीं, परन्तु मरेंगे भी नहीं और हम हिन्दू किसी को गुलाम नहीं बनाते।'3 इस उपन्यास में जातिभेद का विशद वर्णन देखने को मिलता है। निम्न वर्ण के लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें मंदिर में जाने का अधिकार नहीं था। विष्णुदत्त और अग्निदत्त के एक संवाद से तत्कालीन वर्णव्यवस्था का पर्याप्त परिचय लिया जा सकता है। "मैं भरतपुरा-गढ़ी के एक सैनिक अर्जुन का स्मरण कर रहा था परन्तु वह आपके निषेध की परिभाषा में आता है तो वह जाति का कुम्हार, परन्तु उधत, उधमी और निर्लोभ है। "कुम्हार छि" देवता को अप्रसन्न करके कहीं हम सबका विध्वंस न कराना।'4 निम्न वर्ण के लोग चाहें कितने ही वीर क्यों न हों, किन्तु यदि राजा उनसे मिल ले तो राजा को पाप लगेगा। लोग एक-दूसरे का छुआ भोजन नहीं करते थे। "अग्निदत्त के साथ भोजन सामग्री होगी" दिवाकर ने हँसकर उत्तर दिया "जब अग्निदत्त की हो तब न।" यदि खंगार-क्षत्रिय के यहाँ पकी हो, तब उसे कौन खायेगा?5 "गढ़ कुण्डार" में बुन्देलों और खंगारों के जातीय अभिमान एवं एक-दूसरे को ऊँच-नीच समझने की प्रवृत्ति को रेखांकित करना लेखक का प्रमुख ध्येय रहा है। इस प्रकार के कथन जगह-जगह मिलते हैं। इतिहास के साथ रोमांस को गुम्फित करने वाला उपन्यास 'झाँसी की रानी' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है - झाँसी में उस समय मंत्र शास्त्री, तंत्र शास्त्री, वैध रणविद्ध, इत्यादि अनेक प्रकार के विशेषज्ञ थे। शाक्त, शैव वाममार्गी, वैष्णव भी काफी मात्रा में थे। अधिकांश शैव और वैष्णव तथा ऐसे लोगों की तो बहुतायत ही थी जो "गृह शाक्ताः बर्हि शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः" थे। इन सबके संघर्ष में अनेक जातियाँ और उपजातियाँ जिनको शूद्र समझा जाता था, उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थी। व्यक्तिगत चरित्र का सुधार घरेलू जीवन को अधिक शांत और सुखी बनाना तथा जातियों की श्रेणी में ऊँचा स्थान पाना, यह उस प्रगति की सहज आकांक्षा

थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जनेऊ पहनते हैं, यह उनकी ऊँचाई की निशानी है, जो न पहिनता हो वह नीचा है। इसलिए उन जातियों के कुछ लोगों ने जिनके हाथ छुआ पानी और पूड़ी, मिष्ठान्न आमतौर पर ऊँची जाति के हिन्दू ग्रहण कर सकते थे, जनेऊ पहनने आरम्भ कर दिये। उनके इस काम में कुछ बुन्देलखण्डी और महाराष्ट्र के ब्राह्मणों का समर्थन था।6 एक-दूसरे उपन्यास 'कचनार' में भी वर्ग-जातिभेद का विस्तृत चित्रण है। निश्चित ही प्राचीन भारतीय व्यवस्था में जाति का निर्धारण कर्म के आधार पर हुआ होगा। लेकिन धीरे-धीरे जाति व्यवस्था रुढ़ि बन गई और उसके बन्धन दिन-प्रतिदिन बड़े होते गये। निम्न वर्ग में जन्म लेने वाला व्यक्ति यह माना जाने लगा कि इसने पूर्व जन्म में बुरे कर्म किये हैं। इसी आधार पर निम्न जाति का शोषण भी प्रारम्भ हुआ। "कचनार" में इस जाति व्यवस्था का भी यत्र तत्र उल्लेख हुआ है। "दलीप सिंह" के यह पूछने पर भी ब्राम्हणों के सिवा अन्य वर्गों के लोग भी अखाड़े में भर्ती किये जा सकते हैं? महन्त उत्तर देता है - हाँ, ऊँची जाति के सब लोग लिये जा सकते हैं। मूड़े जाने पर सब गुसाई हो जाते हैं, और फिर कोई भेद नहीं रहता है।'7 महन्त की इस बात को सुनकर दलीप सिंह ने कहा - "मैं समझता हूँ। पूर्व जन्म में अच्छे कर्म करने वाला इस जन्म में राजा होता है या गुसाई। जाति व्यवस्था के साथ-साथ उस समय अछूत व्यवस्था में साम्प्रदायिक वैमनस्य भी फैला हुआ था। समाज में शैव, वैष्णव आदि के बीच भी सामंजस्य का अभाव था। इस प्रकार हम देखते है कि वृन्दावन लाल वर्मा की रचनात्मकता में सामाजिक भेदभाव के प्रति रुढ़ता नहीं है। जातियों के भेदभाव का चित्र यहाँ स्पष्ट है अटल गूजर है और लाखी अहीरिन। दोनों के अन्तर्जातीय सम्बन्ध में अनेक बाधायें आती है और अन्त में दोनों का विवाह हो जाने पर भी मरते समय लाखी के ह्रदय में समाज द्वारा मिला त्रास तथा अपमान शूल की भाँति-चुभता रहता है। इस कथा के माध्यम से वर्मा जी तत्कालीन सामाजिक रुढ़िवादिता और निष्ठुरता का चित्रण करते हैं। मृगनयनी के ये संदर्भ मार्मिक हैं। वर्गगत उच्चता का बोध न केवल स्वयं उच्च वर्ग में था, दूसरे वर्ग भी उनसे आतंकित रहते थे। बोधन पुजारी एक ओर तो राजा मान सिंह और मृगनयनी का विवाह स्वेच्छा से करा देता है, क्योंकि यह राजा को ईश्वर मानता है, और दूसरी ओर अटल और लाखी का विवाह वह स्वीकार नहीं करता है। मान सिंह द्वारा अटल और लाखी का विवाह करा देने पर, कुछ ब्राह्मण बीमारी का बहाना बनाकर समारोह में सम्मिलित नहीं हुए। सामयिक संकीर्णता इससे आगे कहाँ जा सकती है। "जाति" हिन्दू समाज की कुरीति है जो जन्म से सम्बन्धित है। यह विवाह व्यवस्था को रक्त सम्बन्ध से जोड़े रहती है। भोजन एवं सहवास पर प्रतिबन्ध लगाने वाली यह व्यवस्था अवैज्ञानिक एवं अमानवीय रुढ़ियों से ग्रस्त है। यह कतिपय नियमों, मान्यताओं का समुच्चय है जो व्यक्ति को एक विशेष पहचान देता है। छुआछूत की समस्या, अछूत की अवधारणा पर आधृत है। यह भारतीय समाज का अभिशाप है। जातीय व्यवस्था का यह सबसे घृणित पक्ष है। यह व्यवस्था "स्पर्श" को प्रतिबन्धित करती है तथा आदमी और आदमी के बीच घृणा एवं द्वेष का प्रसार करती है। सम्पूर्ण वेदान्त, दर्शन, भक्ति और सुधारवादी चेतन्य को चुनौती देने वाला यह तत्व एक आवश्यक बुराई के रुप में भारतीय समाज में आज भी उपस्थित है। सवर्ण हिन्दू सदा से अछूतों पर अन्याय

करते चले आ रहे हैं। आधुनिक युग में इस समस्या के निवारण के लिए बहुमुखी प्रयास किये गये हैं। अस्पृश्यता उन्मूलन के क्षेत्र में गाँधी जी का अमूल्य योगदान भी जाति व्यवस्था के रुढ़िवादी दुर्ग को ध्वस्त करने में असफल रहा। सदा से ही उच्च जातियाँ अछूतों का शोषण एवं दमन करती रही है। अछूतों की छाया तक को अपवित्र माना गया है। ‘‘मनुस्मृति’’ जो भारतीय प्राचीन सामाजिक संरचना का दस्तावेज है ने अछूतों को श्वपच चाण्डाल माना है तथा इनके निवास को गांवों से दूर अवस्थित करने का विचार दिया है। अछूतों को वेद पढ़ने की मनाही रही है। उन्हें जानबूझकर शिक्षा से वंचित रखा गया एवं आर्थिक अधिकारों से भी उन्हें वंचित कर दिया गया। वास्तव में वर्ण व्यवस्था के वे शुद्र जो खेती बारी पर प्रभावी स्वामित्व नहीं रख सकें जो किन्हीं कारणों से मुख्य धारा से कट गयें, जो गरीबी की पीड़ा से गन्दे और विपन्न रह गयें उन्हें सेवक के रूप में मान्यता देते हुए भी उनके संसर्ग को ब्राह्मणों ने प्रतिबन्धित कर दिया। उनके मंदिर प्रवेश पूजा पाठ के अधिकार उनसे छीने गए। उन्हें देव दर्शन ही नहीं देव प्रसाद से वंचित किया गया। कुओं-जलाशयों में से न वह जल ले सकता था न उसका उपयोग कर सकता था। संस्कारों से उसे पहले ही वंचित किया जा चुका था। ऊँच-नीच जातीय सोच ने कथित निम्न जातियों को उनके अधिकारों से सर्वथा वंचित कर दिया था। इसके पीछे अधिकारों और अवसरों को उच्च वर्णों के लिए सीमित कर देने के स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। हमारी सभ्यता और संस्कृति के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। व्यापक पैमाने पर अछूतों ने धर्मान्तरण किया, अन्तर्जातीय तनावों ने जन्म लिया, सामाजिक अन्याय बढ़े, आर्थिक विकास रुक गया, अशिक्षा एवं अनाचार को बढ़ावा मिला। इन सबके साथ ही हमारी राष्ट्रीय एकता खण्डित हुयी। महात्मा ज्योतिराव फुले के प्रयासों से आज हम गौरवान्वित हैं। उन्होंने ‘‘सत्यशोधक समाज’’ नामक संस्था की नींव डाली एवं सामाजिक भेदभाव मूलक छुआछूत को अवैज्ञानिक एवं अधार्मिक कृत्य घोषित किया। सन् 1920 ई. में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कर्वे और शिन्दें के कार्यों को आगे बढ़ाते हुए ‘अखिल भारतीय वर्ग संघ’’ की स्थापना करके इस कुरीति से छुटकारा पाने का श्रेष्ठ कार्य किया। व्यक्तिगत उपेक्षा, अन्याय एवं पीड़ा से व्यथित अम्बेडकर पूरे अछूत समाज के मसीहा बने। संविधान निर्माताओं द्वारा संवैधानिक रीति से अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किये जाने की व्यवस्था से इसे न्यायिक एवं नैतिक समर्थन मिला। गाँधी सदा से ही इस बुराई को मिटाना चाहते थे हरिजन सेवक संघ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी। अन्य आंदोलन जैसे ‘आर्य समाज’ रामकृष्ण मिशन ने भी इस जागृति में अपनी भूमिका निभाई। लाखों सवर्ण हिन्दुओं ने इस कोढ़ से मुक्ति के प्रयास किए। भारत के संविधान में छुआछूत के व्यवहार एवं विचार तक को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। सभी अछूतों को मुक्त भाव से मौलिक अधिकारों की सीमा एवं सामर्थ्य दी गयी। पर आज भी उसके ध्वंसावशेष एवं राख में चिनगारियाँ हैं। अनपढ़ ग्रामीण समाज में आज भी उसकी काली परछाईयाँ हैं जो धीरे-धीरे तिरोहित हो रही है। आचार्य विनोवा भावे के सप्रयत्नों से अस्पृश्यों के प्रति जनमानस एवं लोक व्यवहार में व्यापक परिवर्तन आया। इस प्रकार इस समस्या का समाधान सभी स्तरों पर ढूँढ़ने का प्रयत्न हो

रहा है। पर इसका विष एकदम समाप्त नहीं हुआ है। यह कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ है। हिन्दू जाति व्यवस्था का विरोध, जागरण काल में ही प्रारम्भ हो गया था, लेकिन समाज के अत्यधिक पीड़ित अछूत वर्ग पर सुधारकों का ध्यान केन्द्रित न हो सका था। गोखले संदेश जागरूक महामानव अछूत प्रथा को हिन्दू समाज का कलंक समझकर सुधार के लिए प्रयत्नशील थे। सन् 1910 ई. तक अछूत वर्ग स्वयं जागरूक होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगा। महाराष्ट्र के महारों ने भारत मंत्री के सम्मुख समानाधिकार पाने के लिए प्रार्थना पत्र भेजा था। देशभर के अछूत वर्ग अपने-अपने पेशों में संगठित होने लगे थे। जालंधर में मेहतरों की "वाल्मीकि समाज" ऐसी ही संस्था थी। सन् 1922 ई. के "आर्यभ्रातृ मण्डल" ने जाति व्यवस्था समाप्त करने के उद्देश्य से कतिपय आयोजन किये। उन सबमें यद्यपि अपेक्षित सफलता न प्राप्त हो सकी तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण ने समाज में अभिनव चेतना का मंत्र फूँका। आधुनिक शिक्षा से स्वंय अछूत वर्ग की चेतना जाग उठी, जिससे उनके स्वतंत्र संगठन बनने लगे थे, जो समाज की दासता से उन्हें मुक्ति दे सके और सवर्ण हिन्दुओं की घृणा का प्रतिकार कर सके। यह भावना विशेषतः उनके उपन्यास "गढ़ कुण्डार" में हम लक्षित कर सकते है। समाज में दलितों की उपेक्षा पर चिन्ता उभरने लगी थी। कलकत्ता कांग्रेस ने प्रस्ताव किया कि - "यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह करती है कि परम्परा से दलित जातियों पर रुकावटें चली रही है, वे बहुत दुख देने वाली और क्षोभकारी है जिससे दलित जातियों को बहुत कठिनाईयों, सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है, इसलिए न्याय और मल मंसाहत का यह तकाजा है कि ये तमाम बंदिशें उठा दी जाये।'8 सन् 1936-37 के आस-पास भारतीय समाज में रूढ़ियों और अन्य परम्पराओं का बहुत कुछ अंत हो गया था। समाज में अछूत वर्ग निम्न जातियों को राजनीतिक स्तर पर समानता का अधिकार प्राप्त हो गया था। राष्ट्रीय रंगमंच पर इसी समय हम डॉ. अम्बेडकर और जगजीवन राम जैसे निम्न वर्गीय नेताओं को मध्यवर्गीय पात्रों के साथ बराबरी के स्तर पर कार्य करते हुए पाते हैं। राजनीतिक संदर्भ में गाँधी जी ने अछूत तथा हरिजनों की समस्या को काफी गंभीरता से लिया और उनके उद्धार के लिए विविध रचनात्मक कार्यक्रम, धार्मिक उत्सवों में समानता, खान-पान संबंधी नियम, शादी-विवाह का सम्बन्ध, मंदिर प्रवेश आदि में समानता का व्यवहार प्रस्तुत किये। गाँधी जी का आन्दोलन कई स्तरों पर था - व्यक्ति को उत्पीड़ित करने वाली सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध आन्दोलन, व्यापक निर्धनता के कारण-स्वरुप आर्थिक व्यवस्था के प्रति आन्दोलन तथा विदेशी सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन फलतः गाँधी का यह युग जातियों की समानता की दृष्टि से महान उपलब्धियों का युग है। सन् 1932 ई. में रामणे मैकडानल्ड के कम्यूनल एवार्ड ने अछूतों के स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व की स्वीकृति प्रदान कर दी जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कांग्रेस तथा अछूत वर्ग में पूना पैक्ट का समझौता हुआ, जिसके अनुसार कांग्रेस ने अछूत वर्ग को 148 सीटें देना स्वीकार किया, जब कि अंग्रेज सरकार केवल 91 सीटें दे रही थी। पूना पैक्ट के बाद ही 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना हुई, जिसके मंत्री टक्कर बप्पा की अमूल्य सेवा इतिहास में अमर रहेंगी। इसके द्वारा अछूतों को सामाजिक अधिकार दिलाने के

प्रयत्न किये जाते रहें। वृन्दावन लाल वर्मा भी गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन से प्रभावित हुए। प्रेमचन्द ने अछूतोद्धार के जिस आन्दोलन को अपने उपन्यासों में उठाया है, उसका विशद चित्रण उनके उपन्यासों में हुआ है। वृन्दावन लाल वर्मा इस तरह मूलतः एक ऐतिहासिक उपन्यास रचयिता होते हुए भी इतिहास युगों में व्याप्त अंधकार की घाटियों से परिचित थे, और उनके प्रति उनका एक दृष्टिकोण भी था; सामाजिक विषमता के पीछे अंधविश्वास, स्वार्थ और अशिक्षा के तत्त्वों को वे समझते थे, उनमें एक ऊर्जावान सम्प्रेषण क्षमता थी, कथा-चित्र को रोमांस और यथार्थ के रंगों से इस तरह उकेरते थे कि पाठक मन्त्रमुग्ध होकर न केवल कथात्मक सौंदर्य से जुड़ जाता है, वह लेखक की परिष्कृत और क्रान्तिकारी चेतना को भी समझने लगता है, एक कथाकार की यह सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

कोई भी महत्त्वपूर्ण साहित्यकार नदी का एकांगी द्वीप बन कर नही रह जाता, वह अपने स्तर पर नदी की धारा और उसके आवेश में अपना प्रतिदान करते हुए ही महत्त्वपूर्ण बनता है । वृन्दावनलाल वर्मा को ऐतिहासिक घटनाओं के रोचक विवरणकर्ता मात्र के रूप में आंकना उनके अवदान की पूर्णत: उपेक्षा करना होगा ।

आज भी यदि हम अपने चारों और दृष्टिपात करें तो वही विसंगतियाँ, वही असमानताएँ और विषमताएँ हमें दृष्टिगत होती है, दुर्भाग्य से यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि कुछ स्थितियाँ में तो ये असमानताएँ और भी बीभात्स हो उठी है; लेकिन आशा की बात यह है कि एक ओर जहां अंधकार अकाट्य बनने जैस लगने लगा है । समय को जागरूक करने का प्रयत्न भी निरंतर गतिमान है, शिक्षा का महत्त्व समाज ने समझ लिया है , शिक्षा के स्वरूप में भी एक गतिशीलता आई है । हमें यदि दूसरे रूप में प्रगति करनी है तो समाज के समान्य जन की प्रगति भी आवश्यक है , यह हम समझने लगे है वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के जिन अंकुरों का सींचा था, उनकी स्फूर्ति निश्चय ही हमारे आज को ऊर्जावान बनाने के लिए प्रासंगिक है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता । इतिहास अतीत आवश्यक होता है किंतु वर्तमान और भविष्य की नींव उसी पर आधृत होती है।

संदर्भ सूची

1. “गढ़ कुण्डार” – वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ठ – 20
2. “गढ़ कुण्डार” – वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ठ – 46
3. “गढ़ कुण्डार” – वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ठ – 147
4. “गढ़ कुण्डार” – वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ठ – 111
5. “गढ़ कुण्डार” – वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ठ – 186
6. झाँसी की रानी – वृन्दावन लाल वर्मा – पृष्ठ 37 – 38
7. “कचनार” - वृन्दावन लाल वर्मा – पृष्ठ – 84
8. डॉ पट्टाभि सीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास - अनुवाद हरिभाऊ उपाध्याय, पृष्ठ – 59